LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

॥ श्रीहरिः ॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 9: राजविद्याराजगुह्ययोग

3/3 (श्लोक 23-34), शनिवार, 17 फ़रवरी 2024

विवेचक: गीता विशारद श्री श्रीनिवास जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/48_aYjAK7M8

परमात्मा का स्वरूप और उनकी प्राप्ति के सरल उपाय

परमात्मा भगवान श्रीकृष्ण की वन्दना एवं दीप प्रज्वलन के साथ आज का विवेचन सत्र प्रारम्भ हुआ। **'राजविद्याराजगुह्ययोग'** नामक यह नवम अध्याय श्रीमद्भगवद्गीता का अत्यन्त महत्वपूर्ण अध्याय है। इस अध्याय में सम्पूर्ण गीता-ज्ञान समाहित है। मानो गीता के ज्ञान का सार इसमें आया हुआ है। मुख्य रूप से तीन प्रकार के योग कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादित किए गए हैं। यह अध्याय तीनों योगों का समावेश रूप है, इसलिए यह अध्याय अधिक महत्वपूर्ण है। इस अध्याय के प्रारम्भ में ही श्रीभगवान अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन! अतिगोपनीय गुह्यज्ञान का भण्डार तुम्हारे सामने मैंने रखा है। यह अत्यन्त पवित्र भी है। श्रीभगवान ने अर्जुन को निमित्त मात्र बनाकर समस्त ज्ञान हम मनुष्यों की भलाई के लिए बताया है। यहाँ पर परमात्मा कैसे हैं? यह भी बताया गया है। भगवान श्रीकृष्ण कोई मनुष्य नहीं हैं, वे साक्षात परमात्मा का स्वरूप हैं। अतिगुह्य ज्ञान को वे अपने श्रीमुख से सुना रहे हैं। इस बात को ध्यान में रख कर गीता को पढ़ना और अपने आचरण में लाना चाहिए। श्रीभगवान ने कहा है:-

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामह:।
वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च ।।

सबके माता, पिता और धरणकर्ता परमात्मा श्रीकृष्ण स्वयं हैं।अर्थात् सबके सृजनकर्ता भी वही हैं, पालनकर्ता भी वही हैं और सारी सृष्टि का उद्भव, स्थिति और लय भी वही हैं। यह सब विश्वरूप उन्हीं का है। श्रीभगवान यहाँ यह सब अत्यंत गोपनीय बातें बताने जा रहे हैं। परमात्मा को कैसे पाया जा सकता है, किन बातों का ध्यान रखना है वे सब हम पढ़ने जा रहे हैं। ज्ञानेश्वर माऊली जी कहते हैं कि लोग भगवान की उपासना करते हैं, पूजा करते हैं परन्तु सब कुछ करते हुए जब हम स्वर्ग प्राप्ति की कामना करते हैं; सुख की कामना करते हैं तो वो सब प्राप्त हो जाता है और जितना तप किया है उसके फलस्वरूप स्वर्ग प्राप्ति भी कर लेते हैं परन्तु जैसे ही पुण्यकर्म क्षीण होता है तो पुनः मृत्युलोक में आना पड़ता है। उन्हें सबकुछ परिणाम स्वरूप प्राप्त होता है परन्तु भगवान की प्राप्ति नहीं होती। श्रीभगवान की प्राप्ति किसे होती है? श्रीभगवान कहते हैं:-

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना: पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्हम्।।

अनन्यभाव से (न-अन्य भाव से) जो भक्त भगवान की पूजा करता है; आपको (परमात्मा) को छोड़ कर मैं कुछ नहीं जानता-

ऐसा अनन्य-भाव जिस भक्त के मन में होता है और इसी भावना से भगवान से प्रीति और उनकी भक्ति करता है तो उनको भगवद्प्राप्ति होती है। श्रीभगवान कहते हैं कि जो निरन्तर भगवद्चिन्तन करता है, वही मुझे पा सकता है। निरन्तर भगवद्चिन्तन कैसे करना है यही हमें सीखना है। निरन्तर भगवान का चिन्तन करने का तात्पर्य यह नहीं है कि भगवान के मन्दिर में जाकर दिन-रात जप करें। ऐसा करेंगे तो अपने दायित्वों का निर्वाह नहीं कर पायेंगे। जो अपने कर्तव्य कर्म करते हुए भी अपने द्वारा होने वाले प्रत्येक कर्म को भगवान को अर्पण करते हैं और निरन्तर कर्मरत रहते हुए भगवद्चिन्तन करते हैं, वे परमात्मा को प्राप्त करते हैं। श्रीभगवान कहते हैं कि जो भक्त निरन्तर भगवद्चिन्तन करते हैं उनका **योगक्षेम** मैं प्राप्त कराता हूँ।

'योगक्षेम वहाम्यहम' यह भारतीय जीवन बीमा निगम का बोध-वाक्य भी है। भारतीय जीवन बीमा निगम का लाभ लेने के लिये हमें बीमा पॉलिसी लेकर निरन्तर प्रीमियम देना होता है। यही भाव यहाँ है। भगवान का निरन्तर चिन्तन ही प्रीमियम है जो भगवान को प्रिय है। जो भक्त निरन्तर परमात्मा को स्मरण करता है, उसके लिये श्रीभगवान कहते हैं कि उसकी मुझे चिन्ता रहती है। इसके लिये श्री ज्ञानेश्वर महाराज ने बहुत ही सुन्दर उदाहरण दिया है:

मग तीहीं जें जें करावे । तें मजचि पडिलें आघवें ।
जैशी अजातपक्षांचेनि जीवें । पक्षिणी जिये ॥

पक्षिणी अपने उन्हीं बच्चों के लिये अपना जीवन धारण करती है, जिन बच्चों के अभी तक पङ्ख नहीं निकले होते। वह अपने बच्चों के भले के लिये ही सब काम करती है। यहाँ तक कि इनकी देख-रेख के पीछे अपनी भूख-प्यास भी भूल जाती है। इसी प्रकार जो भी निरन्तर भगवान का चिन्तन करता है, उपासना करता है; भगवान को भी उसकी चिन्ता होती है। जो पूर्णरूप से भगवान का चिन्तन करते हैं; भगवान कहते हैं कि उनका **योगक्षेम** मैं ही वहन करता हूँ। जो पूर्ण भाव से मुझमें लगे हुए हैं उनका पालन मैं ही करता हूँ।

भगवान कौन हैं? कैसे हैं? यह समझे बिना भगवान का भजन करने से ही सबकुछ हो जाएगा ऐसा चाहना ठीक नहीं है। एक बार एक गाँव में बाढ़ आ गई। भगवान का एक भक्त भगवान का भजन कीर्तन कर रहा था। जब पानी बढ़ने लगा तो वह एक पेड़ पर जा बैठा और भगवान से प्रार्थना करने लगा कि अब आप ही बचाइये। जब और अधिक पानी बढ़ने लगा तो एक लकड़ी का टुकड़ा उसके पास से बहता हूआ निकला तो उसने उसे नहीं पकड़ा और कहने लगा कि भगवान बचाइये। लोगों ने उसको नाव पर चढ़ने को बोला तो भी नहीं गया। फिर सुरक्षाकर्मी उसकी मदद के लिए हेलीकॉप्टर से आए तब भी वह नहीं माना। अब पानी का बहाव और बढ़ गया और उसके नाक तक आ गया और वह डूबने लगा तो उसने भगवान से पूछा कि आपने मुझे बचाने का वचन दिया था। इस पर भगवान कहते हैं कि मेरे द्वारा बार-बार मदद भेजने पर भी तुमने नहीं ली तो मैं क्या कर सकता हूँ? लकड़ी के रूप में कौन था? नौका में जो आया था वो कौन था? और जब मैं हेलीकॉप्टर से भी आया तब भी तुमने मुझे नहीं पहचाना। मैंने तुम्हें बचाने के लिए कितने प्रयास किए किन्तु तुमने मुझे नहीं पहचाना। श्रीभगवान को पहले जानो कि जो सर्वत्र है वह किसी भी रूप में हमारे सामने आ सकते हैं। श्रीभगवान के चिन्तन का अर्थ है कि सर्वत्र उसका दर्शन होना। परन्तु हम जिस स्वरूप का चिन्तन करते हैं; हम उनको उसी रूप में प्राप्त करना चाहते हैं जो सही नहीं है।

9.23

येऽप्यन्यदेवता भक्ता, यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय, यजन्त्यविधिपूर्वकम्।।9.23।।

हे कुन्तीनन्दन! जो भी भक्त (मनुष्य) श्रद्धापूर्वक अन्य देवताओं का पूजन करते हैं, वे भी मेरा ही पूजन करते हैं, (पर करते है) अविधिपूर्वक अर्थात् देवताओं को मुझसे अलग मानते हैं।

विवेचनः- हम अन्य देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना करते हैं और भगवान को अलग-अलग रुपों में देखते हैं। परन्तु भगवान

कहते हैं कि हर स्वरूप में मैं ही हूँ। सभी रूपों में एक मैं ही हूँ। भक्त निरन्तर उपासना करता है परन्तु यदि वह सर्वत्र मुझे ही मानता है, सभी रूपों में मुझे ही देखता है तो वह मुझे प्राप्त कर लेता है। जैसे जल नल में भी होता है, टंकी में भी, तालाब में, सरोवर, नदी और सागर में भी होता है। अलग-अलग होने पर भी जल का स्वरूप एक ही है। वह जल (हाइड्रोजन ऑक्साइड - H2O) ही है। यह बात हमको समझना चाहिए कि किसी भी देव की पूजा करें परन्तु हम उसी परमपिता परमात्मा की उपासना कर रहे हैं। इसके लिए ज्ञानेश्वर महाराज जी ने बहुत अच्छा उदाहरण दिया है:-

कां दहाहीं इंद्रियें आहाती । इयें जरी एकेचि देहींचीं होती ।
आणि इहीं सेविले विषयो जाती । एकाचि ठाया ॥

अर्थात् हम आँखों से देखते हैं, कानों से सुनते हैं, नाक से सूँघते हैं, जिह्वा से चखते हैं, त्वचा से स्पर्श करते है। अङ्ग अलग-ेअलग हैं परन्तु प्राणी तो एक ही है। अलग-अलग इन्द्रियों से अलग-अलग कार्य करते हैं, विषय सेवन करते हैं, परन्तु इन्द्रियाँ अलग होने पर भी विषय सेवन करने वाला एक ही है। वैसे ही हम किसी भी रूप की सेवा करें पर वो प्राप्त एक ही परमात्मा को होती है-

तेरे रूप अनेक तू एक ही है,
तेरे नाम अनेक पर तू एक ही है।

श्रीभगवान कहते हैं कि वे मेरी उपासना करते तो हैं पर अविधिपूर्वक करते हैं, अज्ञानता से करते हैं। हम यह नहीं जानते कि जो भी उपासना कर रहे हैं वो सब उसी एक परमात्मा की कर रहे हैं।

9.24

अहं(म्) हि सर्वयज्ञानां(म्), भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति, तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते।।9.24।।

क्योंकि सम्पूर्ण यज्ञों का भोक्ता और स्वामी भी मैं ही हूँ; परन्तु वे मुझे तत्त्व से नहीं जानते, इसी से उनका पतन होता है।

विवेचनः- श्रीभगवान कहते हैं कि सभी यज्ञों की प्राप्ति मुझे ही होती है, मैं ही परमात्मा हूँ। अर्पित किये गये सभी भोग मुझे ही प्राप्त होते हैं और सभी ईश्वरों का प्रभु (स्वामी) मैं ही हूँ। मेरे ही अलग-अलग रूप हैं परन्तु मैं एक ही हूँ। सम्पूर्ण यज्ञों का भोक्ता और स्वामी एक मैं ही हूँ परन्तु वे मुझे तत्त्व से नहीं जानते इसीलिए उनका पतन होता है। परमात्म स्वरूप श्रीकृष्ण ही अर्जुन से संवाद कर रहे हैं। इसलिये वे स्वयं को 'अहम्' कहकर सम्बोधित कर रहे और उनको (अर्जुन को) निमित्त मात्र मान कर हमें ज्ञान दे रहे हैं। परन्तु हम परमात्मा को ठीक से नहीं जानते इसलिए जो भी भगवान को अर्पण करते हैं वो अज्ञानतावश हम नहीं जानते कि हम उन्हीं का दिया हुआ उनको ही अर्पण कर रहे। 'तत्' अर्थात् उस परमात्मा के 'त्व' अर्थात् भाव (उस परमात्मा के भाव) के साथ हम नहीं जानते। हमारा भाव किसी भी देवता की उपासना करते हुए यह होना चाहिये कि हम परमात्मा की ही पूजा करते हैं। इस प्रकार न जानने के कारण हम जो भी उपासना करते हैं तो अपने मार्ग से च्युत हो जाते हैं, परमात्मा तक नहीं पहुँच पाते और अपना पतन कर लेते हैं। इस प्रकार जन्मों के फेर में फँस जाते हैं ।

9.25

यान्ति देवव्रता देवान्, पितॄन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या, यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।।9.25।।

(सकाम भाव से) देवताओं का पूजन करने वाले (शरीर छोड़ने पर) देवताओं को प्राप्त होते हैं। पितरों का पूजन करने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं। भूत-प्रेतों का पूजन करने वाले भूत-प्रेतों को प्राप्त होते हैं। (परन्तु) मेरा पूजन करने वाले मुझे ही प्राप्त होते हैं।

विवेचनः- श्रीकृष्ण कहते हैं कि कुछ लोग देवी-देवताओं की पूजा करते हैं और देवलोक(स्वर्गलोक) तक पहुँचते हैं। कुछ लोग प्रकृति की पूजा करते हैं तो वहाँ तक पहुँचते हैं और कुछ लोग भूत-प्रेतों की पूजा करते हैं तो वे भूत-प्रेत को प्राप्त होते हैं, परन्तु परमात्मा तक नहीं पहुँच पाते हैं। सत्रहवें अध्याय में इसकी विस्तृत जानकारी दी गई है। भगवान कहते हैं कि मेरे लिए भक्ति करने वाले, यज्ञ करने वाले ही मुझ तक पहुचते हैं। जब कोई इस भाव रखता है कि मुझे परमात्मा के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहिए, ऐसे भाव वाले व्यक्ति को परमात्मा की प्राप्ति होती है। जब हम अपना लक्ष्य परमात्मा तक पहुँचने का निर्धारित करते हैं तब ही हम उस तक पहुँच सकते हैं अन्यथा सुख-भोग अथवा सम्पत्ति की प्राप्ति का लक्ष्य निर्धारित करने पर वहीं तक पहुँच पाते हैं।

9.26

पत्रं(म्) पुष्पं(म्) फलं(न्) तोयं(यँ), यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं(म्) भक्त्युपहृतम्, अश्नामि प्रयतात्मनः॥9.26॥

जो भक्त पत्र, पुष्प, फल, जल आदि (यथासाध्य एवं अनायास प्राप्त वस्तु) को प्रेमपूर्वक मेरे अर्पण करता है, उस (मुझमें) तल्लीन हुए अन्तःकरण वाले भक्त के द्वारा प्रेमपूर्वक दिये हुए उपहार (भेंट) को मैं खा लेता हूँ अर्थात् स्वीकार कर लेता हूँ।

विवेचनः- श्रीभगवान कहते हैं कि मुझे आप पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अनेक प्रकार की वस्तुएँ प्रदान करो परन्तु भाव क्या है यह मैं देखता हूँ। 'भक्त्या प्रयच्छति' अर्थात् भक्त किस भाव से अर्पण कर रहा वही स्वीकार्य है। जो भी भक्त प्रेमपूर्वक अर्पण करता है, मुझमें तल्लीन हुए अन्तःकरण वाले उस भक्त के द्वारा दी हुई वस्तु को मैं खा लेता हूँ अर्थात् ग्रहण कर लेता हूँ। मैं भक्त का भाव देखता हूँ। शुद्ध अन्त: करण से, भक्तिभाव से भगवान को जो अर्पण किया जाता है उसे वे स्वीकार कर लेते हैं। सन्त तुकाराम जी महाराज का भजन है-

मनी नाही भाव, म्हणे देवा ! मला पाव ।
देवा अशानं भेटायचा नाही रे !
देव बाजारचा भाजीपाला नाही रे ! ॥

भगवान कोई भाजी-पाला है जिसे बाजार में जाकर खरीद लिया जाए।भगवान भक्त के मन में क्या भाव है वही देखते हैं किसी भी वस्तु विशेष को नहीं देखते। क्या चढ़ाया क्या नहीं इसका कोई महत्त्व नहीं परन्तु भाव महत्त्वपूर्ण है।

9.27

यत्करोषि यदश्नासि, यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय, तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।9.27।।

हे कुन्तीपुत्र ! (तू) जो कुछ करता है, जो कुछ भोजन करता है, जो कुछ यज्ञ करता है, जो कुछ दान देता है (और) जो कुछ तप करता है, वह (सब) मेरे अर्पण कर दे।

विवेचनः- श्रीभगवान कहते हैं कि हे कुन्तीपुत्र! यदि तुम्हारे पास समय नहीं है तो जो कार्य करते हो वह मुझे अर्पण करो या जो भी स्वयं खाते हो वह मुझे अर्पण करो। भोजन करते समय यह मन्त्र गाया जाता है-

वदनि कवळ घेता नाम घ्या श्रीहरीचे ।
सहज हवन होते नाम घेता फुकाचे ।
जिवन करि जिवित्वा अन्न हे पूर्णब्रह्म ।
उदरभरण नोहे जाणिजे यज्ञकर्म ॥

भोजन करते समय भगवान को अर्पण करने के भाव से भोजन किया जाता है तो वह भोजन रूपी कर्म भी हवन हो जाता है। जो

भी कर्म हम करते हैं उसका कर्तृत्व और जो भी हम भोग करते हैं उसे भोगत्व भाव से प्रदान करते हैं; वह भी मैं स्वीकार कर लेता हूँ। वह कर्म स्वयं ही यज्ञ हो जाएगा। भोजन भी भाव से अर्पण करने पर यज्ञ बन जाएगा। यदि किसी को दान भावपूर्ण देते हैं तो वह भी यज्ञ बन जाएगा। 'तेरा तुझको अर्पण क्या लागे मेरा' यह कार्य करने की मेरी शक्ति नहीं है बस यह आपने मुझसे करवाया है। इस भाव से मानव जो भी कर्म करेगा वह यज्ञ बन जाएगा। सन्त तुकाराम जी कहते हैं कि मैं अपनी शक्ति से नहीं बोल रहा परन्तु जो भी भगवान की कृपा प्राप्त हुई उसी कारण बोल पाता हूँ। यह मेरे सखा की ही वाणी है जिनकी कृपा से बोल पाता हूँः-

आपुलिया बळे नाही मी बोलत । सखा कृपावंत वाचा त्याची ॥
साळुंकी मंजुळ बोलतसे वाणी । शिकविता धनी वेगळाची ॥

सालु नामक पक्षी है वह जब बोलता है तो बहुत मधुर कोकिला की भाँति बोलता है परन्तु उससे बुलवाने वाला वो परम पिता परमात्मा है।

सन्त कबीर कहते हैंः-
जो किया सो तुम किया, मैं कछु किया नाहिं।
जो कहो कि मैं किया तो तुम ही हो मुझ माहि॥

अरे! मैंने क्या किया मैंने तो कुछ किया नहीं, परन्तु आप कहते हो कि मैंने किया तो मुझमें भी आप ही हो और जो आपने करवाया वही कर रहा हूँ। ऐसा भाव रखने वाले के साथ भगवान सदैव जुड़े रहते हैं। क्योंकि उसको कोई भी कर्म करना है तो परमात्मा को अर्पण करने का भाव उसमें रहेगा।

परि सर्वथा आपुलां जीवीं ।
केलियाची शंका कांहींचि नुरवीं ।
ऐसीं धुवोनि कर्मे द्यावीं । माझियां हातीं ॥

श्री ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि मैंने किया या मैंने दिया इसका लेश मात्र भी विचार नहीं आना चाहिए।

जो भी कर्म करोगे वो धोकर (कर्तृत्वाभिमान को छोड़कर) मुझे अर्पण करना। ऐसा भगवान कहते हैं। उस कर्म में 'मैं' (अहम् भाव) नहीं चिपका होना चाहिए, नहीं तो वह मुझे अर्पण नहीं होगा। यदि इस भाव से भगवान को अर्पण करते हैं तो वह त्रुटिहीन और शुद्ध हो जाता है। ऐसा करने से भगवत्प्राप्ति हो सकती है।

अपना कर्तव्य-कर्म भगवान के लिये करना 'कर्मयोग' है।
परमात्मा को सर्वत्र जानकर कर्तव्य करना 'ज्ञानयोग' है।
किये गये कर्तव्य कर्मों को प्रेमपूर्वक अर्पण करने से 'भक्तियोग' है।
इस प्रकार यहाँ सारे योग एकत्र हो गये हैं।

भगवान आदि शङ्कराचार्य लिखते हैंः-
आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोग रचना निद्रा समाधिस्थितिः ।
संचारः पदयोः प्रदक्षिण विधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनाम॥

जो कर्म मैं कर रहा हूँ; यह आप ही की पूजा है। मैं चल रहा हूँ, यह आपकी परिक्रमा है; मैं जो बोल रहा हूँ, यह आपकी स्तुति है। यह अति उत्तम प्रयोग है।

पूज्य स्वामी जी श्रीगोविन्ददेव गिरि जी महाराज का भी यही कहना है। हम प्रतिदिन ऐसा भाव रखें।

कर प्रणाम तेरे चरणों में लगता हूँ अब तेरे काज।
पालन करने को आज्ञा तव मैं नियुक्त होता हूँ आज॥

हम जो भी कार्य करते हैं वह परमात्मा का कार्य मान कर करें।
सबकुछ परमात्मा को अर्पण करने से वह कार्य परमात्मा का हो जाता है। केवल मुँह से कहना ही पर्याप्त नहीं है; भाव भी होना चाहिये।

9.28

शुभाशुभफलैरेवं(म्), मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
सन्न्यासयोगयुक्तात्मा, विमुक्तो मामुपैष्यसि।।9.28।।

इस प्रकार (मेरे अर्पण करने से) कर्म बन्धन से और शुभ (विहित) और अशुभ (निषिद्ध) सम्पूर्ण कर्मों के फलों से (तू) मुक्त हो जायगा। ऐसे अपने सहित सब कुछ मेरे अर्पण करने वाला (और) सबसे सर्वथा मुक्त हुआ (तू) मुझे प्राप्त हो जायगा।

विवेचनः- श्रीभगवान कहते हैं कि इस प्रकार कर्म करने से त्याग हो जाता है। कर्म का भी त्याग हो गया, भोग का भी त्याग हो गया। इस त्याग के करने से संन्यास-योग हो जाता है। जो भी भाव से अर्पण करते हैं, वह कर्ता शुभ-अशुभ फल से मुक्त हो जाता है। कर्मफल त्याग से मोक्ष प्राप्त होता है। यदि सब कार्य करने के पश्चात इतना भी बोल दें कि भगवान जो भी कार्य किए हैं वे सब आपको अर्पण हैं, अब मेरा कुछ भी नहीं; जो है वह आपका है; आपका ही दिया हुआ है। श्रीभगवान कहते हैं कि इस भाव से किए हुए कार्य मुझे प्राप्त होते हैं।

9.29

समोऽहं(म्) सर्वभूतेषु, न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां(म्) भक्त्या, मयि ते तेषु चाप्यहम्।।29।।

मैं सम्पूर्ण प्राणियों में समान हूँ। (उन प्राणियों में) न तो कोई मेरा द्वेषी है (और) न कोई प्रिय है। परन्तु जो प्रेमपूर्वक मेरा भजन करते हैं, वे मुझ में हैं और मैं भी उनमें हूँ।

विवेचनः- श्रीभगवान कहते हैं कि मैं सबमें सम हूँ। सभी प्राणियों में मैं समभाव से स्थित हूँ। किसी के लिए मेरे मन में द्वेष भाव नहीं है। मेरा सभी के लिए एक ही भाव है, सम भाव है। मेरे लिए सब समान हैं। यदि कोई मुझसे द्वेष करेगा तो वो मुझसे दूर होगा; मैं नहीं। वैसे ही जो मुझसे प्रेम करेगा वह मुझे भी अत्यन्त प्रिय होगा। जो अनन्य भाव से मेरी भक्ति करेगा तो वह मुझमें रहेगा और उसमें मैं रहता हूँ। भगवान के हृदय में भक्त हैं और भक्त के हृदय में भगवान हैं। किसका हृदय किसने चुरा लिया कहा नहीं जा सकता। ये प्रेम कैसा है? भगवान ऐसे भक्तों को अपने हृदय में बैठा लेते है- भगवान ने भक्त का हृदय चुरा लिया या भक्त ने भगवान का हृदय चुरा लिया। परमात्मा हमारे सबके लिये समान हैं परन्तु यदि हम उसके पास जाते हैं तो वे हमारे लिये और भी सुलभ हो जाता है। जैसे ठण्ड के दिनों में आग सेंकने के लिये आग के पास जाना पड़ता है; वैसे ही परमात्मा की कृपा का अनुभव करने के लिये हमें परमात्मा के निकट जाना होता है। श्रीभगवान कहते हैं कि भक्त के दोषों को वे नहीं देखते।

9.30

अपि चेत्सुदुराचारो, भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः(स्), सम्यग्व्यवसितो हि सः।।9.30।।

अगर (कोई) दुराचारी से दुराचारी भी अनन्य भक्त होकर मेरा भजन करता है (तो) उसको साधु ही मानना चाहिये। कारण कि

उसने निश्चय बहुत अच्छी तरह कर लिया है।

विवेचनः- श्रीकृष्ण कहते हैं कि यदि कोई अत्यन्त दुराचारी मनुष्य भी मेरे पास अनन्य भाव से आता है तो भी वह मुझे प्राप्त कर लेता है। यदि वह अपने कुकर्मों का पश्चाताप करता है और कहता है कि मैंने जो बुरे कर्म किए उनका पछतावा है और वह उस मार्ग को छोड़ कर भक्ति-मार्ग पर चलता है तो उसको भी साधु ही मानना चाहिए। सन्त ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि ऐसे भक्त को '**अनुताप तीर्थ**' में स्नान करने वाला मानना चाहिएः-

तो आधीं जरी अनाचारी ।
तरी सर्वोत्तमुचि अवधारीं ।
जैसा बुडाला महापूरीं ।
न मरतु निघाला ॥

वह डूबने से बच गया जो पश्चताप करता है। ऐसे ही श्रीभगवान कहते हैं कि जो मेरी भक्ति में लग गया वह मानो किनारे लग गया। 'साधुरैव स मंतव्य' वह भी साधु समान ही हो जाता है। पारस का स्पर्श होने से लोहा भी सोना बन जाता है तो साधु के स्पर्श से दुराचारी भी सदाचारी बन जाता है।

यालागीं दुष्कृती जन्ही जाहला ।
तरि अनुतापतीर्थीं न्हाला ।
न्हाऊनि मजआंतु आला । सर्वभावें ॥

जो भी इस भाव से मेरे पास आता है उसको मेरा अनुग्रह प्राप्त हो जाता है।

9.31

क्षिप्रं(म्) भवति धर्मात्मा, शश्वच्छान्तिं(न्) निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि, न मे भक्तः(फ्) प्रणश्यति।।9.31।।

(वह) तत्काल (उसी क्षण) धर्मात्मा हो जाता है (और) निरन्तर रहने वाली शान्ति को प्राप्त हो जाता है। हे कुन्तीनन्दन ! मेरे भक्त का पतन नहीं होता (ऐसी तुम) प्रतिज्ञा करो।

विवेचनः- श्रीभगवान कहते हैं कि हे पार्थ! ऐसा दुराचारी तुरन्त ही मुझे प्राप्त होता है। किसी डॉक्टर के पास पहले से ही मरीज होते हैं परन्तु यदि कोई एक्सीडेंट वाला या गम्भीर स्थिति वाला मरीज आ जाता है तो वह तुरन्त शेष सबको छोड़कर उस गम्भीर स्थिति वाले मरीज का उपचार करने में लग जाता है। ऐसे ही यदि कोई दुराचारी भगवान की शरण में आता है तो भगवान उसको तुरन्त ही स्वीकार कर लेते हैं और वह परम् शान्ति को प्राप्त कर लेता है।

श्रीकृष्ण कहते हैं, हे कौन्तेय! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मेरा वह भक्त कभी मुझसे दूर नहीं होता जो मेरी शरण में आता है; न ही कभी उसका पतन होता है। श्रीभगवान कहते हैं कि वह कितना ही दुराचारी हो मैं उसे धर्मात्मा बना देता हूँ।

9.32

मां(म्) हि पार्थ व्यपाश्रित्य, येऽपि स्युः(फ्) पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्राः(स्), तेऽपि यान्ति परां(ङ्) गतिम्।।9.32।।

हे पृथानन्दन ! जो भी पाप योनि वाले हों (तथा जो भी) स्त्रियाँ, वैश्य और शूद्र (हों), वे भी सर्वथा मेरे शरण होकर निःसन्देह परमगति को प्राप्त हो जाते हैं।

विवेचनः- श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे पृथा-नन्दन! जो भी पाप योनि वाले हों, दुराचारी हों तथा जो भी स्त्री, पुरुष, वैश्य, शूद्र, ब्राह्मण,आदि किसी भी जाति के हों; वे भी सर्वथा मेरी शरण होकर निस्सन्देह परमगति को प्राप्त हो जाते हैं क्योंकि वे अब मेरी शरण में आए हैं। मैं उनमें कोई भेद-भाव नहीं करता हूँ और उस भक्त को मोक्ष प्रदान करता हूँ। वह जन्मों के बन्धन से मुक्त हो जाता है। स्त्रियाँ भाव प्रधान होती है उनकी संसार से विरक्ति कठिन होती है। वैश्य और शूद्र या अन्य भी कोई जो परमात्मा की ओर आता है; श्रीभगवान कहते हैं कि उनको मैं परम गति प्रदान करता हूँ।

9.33

किं(म्) पुनर्ब्राह्मणाः(फ्) पुण्या, भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं(म्) लोकम्, इमं(म्) प्राप्य भजस्व माम्।।9.33।।

(जो) पवित्र आचरण वाले ब्राह्मण और ऋषिस्वरूप क्षत्रिय भगवान् के भक्त हों, (वे परम गति को प्राप्त हो जायँ) इसमें तो कहना ही क्या है। (इसलिये) इस अनित्य (और) सुखरहित शरीर को प्राप्त करके (तू) मेरा भजन कर।

विवेचनः- श्रीभगवान आगे कहते हैं कि यह अनित्य लोक है। यहाँ कुछ भी स्थिर नहीं है, सब परिवर्तनशील है। जिस सुख की चिन्ता मनुष्य को लगी रहती है वह सच्चा सुख नहीं है। इस झूठे सुख से परे तू मेरा भजन कर, मेरी भक्ति कर। तुझे परम सुख की प्राप्ति होगी।

एक व्यक्ति कहता है मेरे पास कुछ भी धन नहीं था मैं बहुत दु:ख में था। अब मेरे पास बहुत धन है तब भी मैं दु:खी हूँः
When I have no money, I was miserably sorry.
But now I have enough money, but I'm comfortably sorry.

व्यक्ति कितना ही प्रयास करे पर उसको सच्चा सुख कभी नहीं मिलता। वह कितना भी धन अर्जन कर ले उसको कभी तृप्ति नहीं होगी। सच्ची तृप्ति, सच्चा सुख केवल भगवान की शरण में ही है। जब इस सत्य का ज्ञान होता है तो वह परम गति को प्राप्त करता है।

9.34

मन्मना भव मद्भक्तो, मद्याजी मां(न्) नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवम्, आत्मानं(म्) मत्परायणः।।9.34।।

(तू) मेरा भक्त हो जा, मुझमें मन वाला हो जा, मेरा पूजन करने वाला हो जा (और) मुझे नमस्कार कर। इस प्रकार अपने-आपको (मेरे साथ) लगाकर, मेरे परायण हुआ (तू) मुझे ही प्राप्त होगा।

विवेचनः- श्रीभगवान के मुखारविंद से उद्धरित हुई श्रीमद्भगवद्गीता का नवम् अध्याय का अन्तिम श्लोक अट्ठारहवें अध्याय में भी है परन्तु इसका चतुर्थ चरण अलग है। श्रीभगवान कहते हैं कि तू मेरा भक्त हो जा, मुझमें मन रमा ले, तेरा प्रत्येक कर्म सिद्ध हो जाएगा। तू मेरा पूजन करने वाला बन जाएगा और मुझे ही नित ध्याएगा। इस प्रकार अपने-आपको मुझमें लगाकर, मेरे पारायण हुआ तू मुझे ही प्राप्त करेगा। जो मुझे छोड़ कर किसी को नहीं चाहता वह मत्परायण हो जाता है; वह मुझे प्राप्त हो जाता है।

जो भी काम करेंगे भगवान के लिये करेंगे। भोजन करें तो वह भी भगवान के लिये करें। ऐसा संकल्प लेना चाहिये। भगवान की यही आज्ञा है।
इस उत्तम भाव के साथ आज के विवेचन को परमात्मा को अर्पण करते हुए सुन्दर विवेचन का समापन हुआ।

प्रश्नोत्तर सत्रः-
प्रश्नकर्ताः गायत्री दीदी
प्रश्नः 'अविधिपूर्वक' को विस्तार से समझाइए। अत्यन्त दुराचारी को कैसे भगवान क्षमा कर देते हैं?

उत्तरः शास्त्रों से सम्मत क्रिया करना विधिपूर्वक है। उसे न जानकर अज्ञान से कर्म करना अविधिपूर्वक है।
जो दुराचारी है परन्तु वह जब भगवान की शरण में आ जाता है तो वह दुराचारी नहीं रहता। वह इन कर्मों को छोड़ देता है। अनन्य भाव का अर्थ ही यह है कि वह केवल परमात्मा को ही चाहता है। फिर वह अन्य कोई लाभ नहीं देखता। वह दुराचार कैसे कर सकता है? मैंने जीवन में ऐसे दुराचारी को सदाचारी बनते देखा है। रत्नाकर डाकू वाल्मिकी ऋषि बने यह तो पौराणिक प्रसङ्ग है। वर्तमान में भी सन्तों की कृपा से ऐसे हृदय परिवर्तन देखे जाते हैं। ऊपर के दिखावे की भक्ति नहीं होनी चाहिये।

प्रश्नकर्ताः भारती दीदी
प्रश्नः उनतीसवें श्लोक का अर्थ समझा दीजिये। भक्ति किस प्रकार करें?
उत्तरः श्रीभगवान कहते हैं कि सभी प्राणियों में मैं समभाव से स्थित हूँ परन्तु जो भक्तिपूर्वक मेरा भजन करते हैं वे मेरे प्रिय होते हैं। वे मेरे हो जाते हैं। वे मुझमें समा जाते हैं और उनके हृदय में मैं रहता हूँ।
भक्ति के लिये परमात्मा को प्रेमपूर्वक कुछ अर्पण करें। कोई वस्तु न हो तो अपने द्वारा किये गये कर्म अर्पण करना ही 'भक्तियोग' है। यही 'कर्मयोग' भी है।

प्रश्नकर्ताः सुमिता दीदी
प्रश्नः हम हमारे सम्पूर्ण कर्म भगवान को अर्पण करते हैं। कर्म अच्छा है तो ठीक है बुरा कर्म कैसे अर्पण किया जा सकता है?
उत्तरः परमात्मा को अर्पण करने के भाव से यदि कोई कर्म करेंगे तो बुरे कर्म होंगे ही नहीं। कोई भी कर्म करें चाहे अपने घर की सफाई ही करना है तो हम इस भाव से करें कि यह भगवान का घर है और मुझे साफ करना है। तो वह कर्म भी उत्तम रीति से होगा।

प्रश्नकर्ताः जयंत भैया
प्रश्नः जब आप बोलते हैं कि सब भगवान को अर्पण करो। मैं तो यह सोचता हूँ कि मेरे हाथ से जो भी कर्म हो रहा है वह मैं नहीं कर रहा हूँ। यह सब भगवान मुझसे करवा रहे हैं; मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ। तो मैं यदि अर्पण कर रहा हूँ तो यह तो दूसरा भाव (द्वैत भाव) हो जाएगा। जबकि मैं तो साधन मात्र हूँ। 'भगवान और मैं एक ही हूँ' ऐसा सोचना चाहिये। जो भी दिया है वह भगवान ने ही दिया है।
उत्तरः यह अत्युच्च अवस्था है - 'मैं नहीं कर रहा हूँ, मेरे द्वारा भगवान ही कर रहे हैं'। कर्मों के अर्पण में फिर भी यह भाव हो सकता है- 'तेरा तुझको अर्पण'। जैसे गङ्गा जी में खड़े होकर हम अर्घ्य देते हैं तो वह जल गङ्गा जी में ही प्रवाहित हो जाता है। वैसे उसी का कार्य उसी ने हमसे करवाया है और उसे ही अर्पण है। यही करना है।

अद्वैत अवस्था अति उच्च अवस्था है। आप अगर वहाँ तक पहुँच गये हैं तो उसे ही पकड़ कर रखना है। अपने कर्म परमात्मा को अर्पण करते-करते भी यह अवस्था प्राप्त हो जाएगी। शायद आपकी अनेक जन्मों की साधना है। 'मुझमें कर्तापन का अहङ्कार नहीं है' यह अहङ्कार भी नहीं होना चाहिये। यह अद्वैत अवस्था का लक्षण है।

प्रश्नकर्ताः संतोष जी
प्रश्नः आपने तैंतीसवें श्लोक में कहा है कि मन को भगवान में लगाना है। भगवान तो सर्वत्र है जबकि मन अस्थिर है। उसे परमात्मा में कैसे जोड़ें?
उत्तरः मन अस्थिर है परन्तु मन भावना करता है, बुद्धि उसे स्थिर करती है। परमात्मा के भाव में मन को स्थिर करना भक्ति है। मन में भाव जगाना और बुद्धि से उसका विश्लेषण करना और परमात्मा को जानने का प्रयास करना चाहिये।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यँ) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः।।

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'राजविद्याराजगुह्ययोग' नामक नवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||